REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 12 | SEPTEMBER - 2018

प्राचीन भारतीय समाज में राज्य के विभिन्न प्रकारों की अवधारण : ऐतिहासिक एवं वैचारिक विश्लेषण

डॉ. विजय कुमार
विभाग प्रभारी एवं असि0 प्रोफेसर – प्राचीन इतिहास विभाग,
इन्द्रासन सिंह स्वतन्त्रा संग्राम सेनानी राजकीय महाविद्यालय, पचवस, बस्ती।

शोध सारांश –

राज्य की अवधारणा के अन्तर्गत यूनानी विचारधारा में राज्य को मानव जीवन की परम परिणति माना गया है। यथाः– अरस्तु ने मानव को राजनीतिक पशु की संज्ञा दी है परन्तु भारतीय विद्वानों के अनुसार राज्य एक ऐसी संस्था है जो मनुष्य को उसके जीवन के उच्चतम लक्ष्य के योग्य बनाने का एक साधन मात्र है। राज्य अपने आप में स्वयं कोई लक्ष्य नहीं है। भारत की भौगोलिक विविधता ने इसकी राजनैतिक विचारधारा एवं प्रणालियों को प्रभावित किया। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण देश में विभिन्न प्रकार के राज्य अस्तित्व में आये। विशाल साम्राज्यों की साम्राज्य विस्तार नीति भी राज्यों के प्रकारों को समाप्त नहीं कर सकी थी। वैदिक ग्रन्थों में अनेक प्रकार के राज्यों का संकेत मिलता है। यजुर्वेद में एक देवता को राजन, वैराट, सम्राट, स्वराट् तथा सर्वराट् कहा गया है। परन्तु इसके आधीन उस समय कौन–कौन से राज्य या जनपद थे इसका उल्लेख नही मिलता है। प्राचीन समय में राजतन्त्र हिन्दू राज्य का प्रमुख आधार था। यह कई रूपों में प्रचलन में था। कुछ राजा सर्वोच्च सम्प्रभु होते थे और कुछ केवल नाम के लिए होते थे। इन दोनों प्रकार के शासकों के मध्य का अन्तर उनके नामों के साथ लगी उपाधियों से जाना जा सकता है। गुप्त साम्राज्य के उपरान्त ये उपाधियाँ भारतीय राजनीतिक जीवन की मान्य विशेषता बन गई। सर्वोच्च शासकों को परम्भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर इत्यादि भव्य उपाधियों से इंगित किया जाता था। जबकि इनसे कम शक्ति वाले मुखियाओं का सभादिगत, पंचमहाशब्द, महासामन्ताधिपति इत्यादि कह कर पुकारा जाता था। साम्राज्य, भोज्य, स्वराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य राज्य, महाराज्य, आधिपत्यम, सामन्ती–पर्यायी राज्य शासन के विभिन्न प्रकार के हैं।

मुख्य शब्द – भोजा, वैराज्य, सौराष्ट्र, प्रभुता, अश्वमेघ यज्ञ, पेत्तानिका, परमेष्ठ्य

ऋग्वेद में राजाओं का समिति में एकत्रित होने का उल्लेख है। सम्भवतः एक राज्य पर कई राजा मिलकर शासन करते थे। इस काल में अनेक जन राज्यों का भी विवरण मिलता है। यथा– ऋग्वेद के अनुसार विश्वामित्र की स्तुति द्वारा भरत जनों की रक्षा हुई थी। अर्थववेद में भी संघ राज्य के सदस्यों का संकेत मिलता है, इससे स्पष्ट होता है कि गणतंत्रीय राज्य वैदिक काल में विद्यमान थे। सिकन्दर के साथ आये इतिहासकारों ने सिन्धु क्षेत्र के अनेक गणराज्यों का विवरण प्रस्तुत किया जिनकी शासन पद्धति भिन्न–भिन्न प्रकार की थी। प्राचीन भारतीय राज्यों को दो भागों में बाँट सकते हैं – राजतन्त्रीय व्यवस्था से शासित राज्य और गणतन्त्रीय व्यवस्था से शासित राज्य।

ऐतरेय ब्राह्मण में कथन मिलता है कि देवताओं ने विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के राज्यों का शासन इन्द्र को सौंपा। इनमें भौज्य शासन प्रणाली का उल्लेख हुआ है। कालान्तर में शिलालेखों में भोजा और महाभोजा साधारण और उच्चतर वर्गों के नेताओं की ओर संकेत करते हैं। प्रभुता भोजा नेताओं में निहित थी। संविधान भोज्य कहलाता था, जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण में है। अपने विशेष प्रकार के संविधान के कारण पश्चिमी

भारत में एक जन – समूह का नाम ही भोजा पड गया। प्रजाजनों को भोजन आदि आवश्यक उपभोगों की सुव्यवस्था जहाँ राज्य द्वारा की जाती है, उस राज्य को भौज्य कहते हैं। प्रजा का काम मिले और उचित दाम मिले जिससे उसका योगक्षेम सुचारू रूप से चले, यह देखना ऐसे राज्य का मुख्य कर्तव्य है। रहने के लिए घर, पहनने के लिए वस्त्र, पीने के लिए शुद्ध जल, खुली हवा, रुग्ण होने पर उपयुक्त औषधि, पूर्ण सुरक्षा की व्यवस्था, शक्ति क्षीण होने की अवस्था में राज्य की ओर से उत्तम प्रबन्ध हो। यह जिस राज्य शासन में होता है, वही भौज्य है। विर्दभ (बरार) के राजा महाभारतकाल में कुन्तिभोज कहलाते थे। मालवा की धारा नगरी के राजा भी भोज कहलाते थे। स्पष्ट है कि भोज दक्षिण देश के राजाओं की उपाधि थी और उनका राज्य भोज्य कहलाता था। कच्छ के पास भुज है और इसलिए वहाँ के राजा को और राज्य को भैज्य कहा जा सकता है।

ऐतरेय ब्राह्मण (8.14) के विवरण में राजन् वैराज, स्वराज, भोज तथा साम्राज्य शासकों की विभिन्न उपाधियाँ थीं जिनकी समान स्थिति का बोध होता है।श डा० अल्तेकर के मतानुसार वैराज्य प्रायः गणराज्य रहा होगा जबकि इसके साथ उल्लिखित अन्य राज्य राजतन्त्रीय प्रतीत होते हैं क्योंकि वैराज्य के सन्दर्भ में ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है जिस राज्य में राजा न हो वैराज्य है। वैराज्य शासन – प्रणाली को प्रजातन्त्रात्मक भी कहा जा सकता है। इसमें सम्भवतः किसी व्यक्ति विशेष को राजा न बनाकर सम्पूर्ण देश अथवा जाति को राजपद के लिए अभिषिक्त किया जाता था। पाणिनी काल से ईसा पूर्व चौथी शती तक उत्तर के भद्रों में यह राज्य व्यवस्था प्रचलन में थी। सम्भवतः भद्रों की राजधानी का नाम शाकल था जो कि आधुनिक श्यालकोट है। जायसवाल महोदय ने वैराज्य और अराजक (राजा–हीन राज्य) के विषय में लिखा है कि वैराज्य का शाब्दिक अर्थ है राजा–हीन संविधान। यद्यपि ऐतरेय ब्राह्मण ने ऐसे राष्ट्रीय संविधान उत्तर के कुछ राष्ट्रों में विद्यमान थे, यह बताया है परन्तु यजुर्वेद के काल में ऐसे संविधान का अनुसरण दक्षिण में भी होता था। अराजक राज्य में एक प्रकार का आदर्श संविधान था। इस संविधान का आदर्श यह था कि धर्म को शासक माना जाता था। ऐसे राज्य का आधार नागरिकों में आपसी सहमति अथवा सामाजिक संविदा था। यह एक प्रकार से प्रजातन्त्र का अतिवाद रूप था।

स्वराज्य शासन प्रणाली पश्चिमी भारत में प्रचलित थी। स्वराज्य प्रणाली के शासक को स्वराष्ट्र कहते थे। स्वराष्ट्र का अर्थ ऐसे शासक से है जो स्वयं शासन का संचालक होता था। इस शासन प्रणाली में लोग अपने मध्य से किसी व्यक्ति को स्वराष्ट्र चुनते थे स्वराष्ट्र निर्वाचित होने के लिए व्यक्ति को अपनी योग्यता को प्रदर्शित करना होता था। इस प्रकार लोगों के मध्य में से केवल योग्य व्यक्ति ही राजा हो सकता था। वाजपेयी के मतानुसार, ऋग्वेद में एक मन्त्र और अथर्ववेद में भी एक मन्त्र मिलता है, जिनमें पहले का अर्थ है– हे मित्रों, जिनकी दृष्टि विशाल हुई है तुम और हम सब विद्वान मिलकर अनेकों की सहायता से पालन होने वाले स्वराज्य में भली–भाँति यत्न करें। दूसरे का अर्थ है , जो अज वा नेता पहले उत्पन्न हुआ, उसी ने इस स्वराज्य को प्राप्त किया, इससे श्रेष्ठ और कोई वस्तु नहीं है। इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि स्वराज्य शासन प्रणाली में बहुत कुशल व्यक्तियों की अपेक्षा होती है । यह प्रणाली नीच्यों और अपाच्यों में प्रचलित थी। जायसवाल के मतानुसार सिन्धु नदी के मुहाने के आस–पास नीच्य और उसके ऊपर अपाच्य बसते थे। कुछ मतोनुसार पश्चिम में सौराष्ट्र है, जो सम्भवतः पहले सुराष्ट्र वा स्वराट् कहलाता होगा, जिससे बिगड़कर सुराष्ट्र या सूरत बन गया हो। स्वराट् का अर्थ स्वयं प्रकाशवान् वा स्वयं शासन वाला है। यह वहाँ के शासकों की पदवी थी और राज्य को स्वराज्य कहा जाता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि जो विद्वान वाजपेय यज्ञ द्वारा बलि प्रदान करता है वह स्वराज्य प्राप्त करता है।

द्वैराज्य एवं विरूद्ध राज्य शासन प्रणाली राजतन्त्र एक अन्य रूप है। सम्भवतः ऐसे राज्य में दो राजा साथ–साथ शासन करते थे। प्रायः राजपद के परस्पर प्रतिद्वन्दी विवाद बचाने के लिए तथा विभाजन से राज्य को नष्ट होने से बचाने के लिए साथ–साथ शासन करना उचित समझते थे। द्वैराज में कभी–कभी दो भिन्न–भिन्न परिवारों के शासक भी एक साथ करते थे। जब सिकन्दर भारत से, सिन्धु के रास्ते से लौट रहा था तब पाटल नामक द्वैराज्य उसे मिला था। अर्थशास्त्र में भी ऐसे राज्य का उल्लेख है। ऐसे राज्यों का सूत्रपात सम्भवतः इस प्रकार हुआ, जब दो भाइयों अथवा उत्तराधिकारियों ने राज्य के विभाजन के स्थान पर सम्पूर्ण राज्य पर शासन करना ही पसन्द किया हो। परन्तु जिस प्रकार दो तलवारें एक म्यान में नही रह सकती उसी प्रकार एक ही राज्य में दो राजा भी मिलकर नही रह सकते। अर्थशास्त्र इसके पक्ष में नही है। जैन साधुओं को ऐसे राज्य में रहने या जाने का निषेध किया गया है। कौटिल्य ने स्पष्ट कहा है कि द्वैराज्य परस्पर संघर्ष में नष्ट हो

जाता है। प्राचीन भारत में हिन्द यवन शासकों में द्वैराज्य प्रणाली दृष्टिगोचर होती है। पश्चिम–उत्तर भारत व मथुरा में शासन करने वाली शक जाति में भी संयुक्त शासन पद्धति अपनाने का प्रमाण मिलता है। द्वैराज्य एवं विरूद्ध राज्य शासन प्रणाली में एक साथ दो राजाओं के राज्य करने से इसकी स्थिरता के प्रति संदेह होना स्वाभाविक है। द्वैराज्य में कभी–कभी पितामह और पौत्र भी एक साथ शासन करते थे। यथा–चष्टन तथा रूद्रदामन की संयुक्त मुद्रायें द्वैराज्य शासन प्रणाली को इंगित करती हैं। जैन ग्रन्थों में द्वैराज्य के साथ–साथ विरुद्ध राज्य का भी वर्णन है। अल्तेकर महोदय के अनुसार आचांरगसूत्र के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जब द्वैराज्य के शासकों में परस्पर विवाद की स्थिति आ जाती है तो द्वैराज्य को विरूद्ध रज्ज या विरूद्ध राज्य की संज्ञा दी जाती है।

राष्ट्रिक शासन–प्रणाली राज्यों में कोई पैतृक अथवा वंशानुक्रमागत राजा नही होता था। शासन कार्य नेताओं के एक मण्डल द्वारा संचालित किया जाता था। राष्ट्रिक शासन प्रणाली का प्रचलन पश्चिम के राष्ट्रिक लोगों में था। इसका उल्लेख अशोक के शिलालेखों में प्राप्त होता है। अशोक द्वारा इन लोगों के किसी राजा का उल्लेख नही किया गया है। खारवेल द्वारा भी उनका उल्लेख एकवचन में नहीं वरन् बहुवचन में किया गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि सम्भवतः इनका कोई एक राजा न होता हो। इनमें प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली का प्रचलन था। भोज्य शासन प्रणाली की भाँति ही पश्चिम में रहने वाले राष्ट्रिकों का नामकरण वहाँ की शासन प्रणाली के आधार पर ही हुआ होगा। कौटिल्य के कथनानुसार सुराष्ट्र के लोगों का कोई राजा उपाधिकारी शासक नहीं होता था। ये लोग प्रजातन्त्री थे। कई एक राज्यों का राष्ट्रिक या सुराष्ट्र नाम भी सम्भवतः वहाँ की इसी शासन प्रणाली के कारण पडा होगा। अंगुप्तर निकाय पर टिप्पणी में स्पष्ट किया गया है कि पेत्तानिका आनुवंशिक नेतृत्व है–पितरा दत्तं सापतेय्यं– जो पूर्वजों से चला आया हो। पेत्तनिका के विपरीत राष्ट्रिका और भोजा से ऐसे नेतृत्व का अर्थ था जो आनुवांशिक नहीं था। यह स्पष्ट है अशोक के शिलालेखों में उल्लिखित राष्ट्रिका अराजक समुदाय था। उनके शासन का रूप गणतन्त्री था। ऐसा प्रतीत होता है कि पेत्तानिका, राष्ट्रिका अथवा भोजा शासन का ही विकृत रूप था, जहाँ शासक आनुवांशिक आधार पर होने लगे थे।

अराजक राज्य प्रणाली भारत के अनेक भागों में विद्यमान थी। जैन सूत्र के जिस वर्ग में अराजक शासन प्रणाली का उल्लेख है। उसमें उल्लिखित अन्य समस्त शासन प्रणालियाँ भी ऐतिहासिक सत्य है। इसलिए उनको असत्य मानने के लिए कोई आधार प्राप्त नही होता। वैसे यह कल्पना की जाती है कि जिन प्रदेशों में अराजक राज्य होगे उनका आकार अपेक्षाकृत छोटा रहा होगा। अराजक राज्य का अभिप्राय बिना राजा के राज्य से है। इस प्रकार का उल्लेख रामायण में मिलता है। जब राजा दशरथ की मृत्यु हो गयी थी और वहाँ कोई शासक नहीं था, क्योंकि भरत एवं शत्रुघ्न अपने ननिहाल में थे तथा राम लक्ष्मण वन जा चुके थे। ऐसे राज्य को भरत ने अराजक (राजा रहित) राज्य की संज्ञा दी तथा उसे अत्यन्त निकृष्ट प्रकार का कहा है क्योंकि न इसमें कोई व्यवस्था रहती है न कोई सुरक्षा, न लोग सुखी रहते है और न किसी प्रकार की उन्नति ही होती है। इस वचन के माध्यम से अराजक राज्य का जो लक्षण बताया गया है उसमें आलंकारिक भाषा का प्रयोग है। क्योंकि अराजक राज्य में केवल आपत्तिकाल में ही राजा का अभाव होता है न कि सदैव के लिए अतैव यह कहा जा सकता है कि अराजक राज्य केवल कल्पना का विषय है।

वैदिककाल में यदु, पुरू, द्वह्यु, अनु तथा तुर्वसु आदि जन थे। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि विश्वामित्र की पूजन से भरत जनों की रक्षा हुई। एक विद्वान के मतानुसार इस विवरण में वर्णित राजा किसी प्रदेश का राजा नही बताया गया है वरन् एक निश्चित लोगों (भरत जनों) का राजा बातया गया है। इससे प्रतीत होता है कि कुछ निश्चित समुदाय के लोग अपना अलग राजा चुन लेते थे। अतः यह राज्य अत्यन्त छोटा होता होगा। इसे जन राज्य की संज्ञा दी जाती थी। इसके विवरीत एक शक्तिशाली राजा अथवा राज्य के अधीन कई राज्यों से मिलकर बने राज्य को साम्राज्य कहते हैं तथा इसके शासक को सम्राट। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अश्वमेघ यज्ञ द्वारा सब राजाओं का पराभव करने से साम्राज्य होता है। डा० जायसवाल ने इस पद्धति को सार्वभौम और आधिपत्य से प्राचीन बताया है। ऐतरेय ब्राह्मण में इसे राजतन्त्री पद्धतियों से भिन्न बताया गया है। इसका कारण यह है कि साम्राज्य ऐसे राज्यों का एक समूह होता था, जो किसी राज्य को सर्वोपरि मानते थे। आधुनिक शब्दावली में इसे संघीय साम्राज्यशाही पद्धति कहा जा सकता है। संघात्मक रूप के कारण यह एक राजा वाली प्रणाली से भिन्न था। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार प्राची पूर्व के शासक साम्राज्य के लिए अभिषेक कराते थे और मगध कालान्तर में सुप्रसिद्ध साम्राज्य का केन्द्र बना।

प्राचीन भारतीय साम्राज्य न तो एकात्मक थे और न सामन्ती संघ बल्कि करद पद्धतियों वाले थे। उन साम्राज्यों में से एकीकृत नियन्त्रण अथवा प्रभाव क्षेत्र अर्थात चक्र की सीमाओं का विस्तृत प्रशासनिक तन्त्र नहीं हो सकता था। वे सैनिक शक्ति पर आधारित साम्राज्य थे, जिनमें जीते गये राज्यों अथवा प्रदेशों का शासन उन्हीं के शासकों को लौटा दिया जाता था। उन्हें सामन्ती संघ राज्य भी नही कहा जा सकता था। क्योंकि सामन्तवाद के सिद्धान्त का अभाव था। प्राचीन भारतीय साम्राज्य एक प्रकार की करद पद्धतियों वाले थे और उस काल की शब्दावली में चक्र अथवा अर्थशास्त्र की भाषा में मण्डल थे अर्थात प्रभाव क्षेत्र के चक्र जिनके ऊपर चक्रवर्ती, अधिपति राजा शासन करता था। सम्राट, अधिपति, सार्वभौम से मिलते जुलते अन्य विशेषणों अथवा राजाओं की उपाधियों व पदवियों का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर मिलता है। इनमें चक्रवर्ती, परमेश्वर, महाराजाधिराज, अखण्ड भूमिप, विश्वराजा, चतुरान्तेश आदि उल्लेखनीय हैं। प्राचीन भारतीय शासक अत्यन्त महत्वकांक्षी थे। वे अन्य शासकों के ऊपर शासन करना चाहते थे अर्थात वे सार्वभौम अथवा एकराट् बनना चाहते थे। इस प्रकार के विचार को चक्रवर्ती सिद्धान्त की संज्ञा दी जाती है। चक्रवर्ती शब्द से तात्पर्य है कि राज्य के रथ का पहिया (चक्र) बिना रूकावट के सभी ओर घूमता है। चक्र प्रभुता का प्रतीक है। इससे विश्व राज्य की विचारधारा अर्थात् समुद्र से समुद्र तक के राज्य का बोध होता है। महाभारत के एक वर्णनानुसार सार्वभौम का पद केवल युधिष्ठर ने ही प्राप्त कियाय अन्य शासक अपने–अपने राज्य के शासक मात्र थे। जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों में चक्रवर्ती राजा उल्लेख है। जैन धर्म के चौबीसवे तीर्थकर महावीर के सन्दर्भ में उनकी माता को ज्योतिषियों नें बताया था कि यह बालक या तो चक्रवर्ती राजा होगा या जैन सन्यासी ।

प्राचीन भारत में राजतन्त्र के दो रूप अवश्य थे–प्रथम, अधिपति अथवा सम्राट और दूसरा, करद–शासक अथवा सामन्त। दोनों के बीच अन्तर को ऐसे राजाओं की उपाधियों से स्पष्ट किया जाता था। सर्वोच्च शासक को चक्रवर्ती, महाराजाधिराज, सार्वभौम, अधिपति आदि नाम दिये जाते थे। अतएव यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य से पूर्व काल में भी भारतीय सर्वव्यापी राजाओं से परिचित थे। शुक्रनीतिसार में राजपद की विभिन्न श्रेणियों अथवा शासकों के पद इस प्रकार दिये है – सामन्त, माण्डलिक, राजन, महाराजा, सम्राट, सार्वभौम इत्यादि। राजत्व के विभिन्न पदों में उच्चतम को सामन्तपर्यायी कहा गया है, ऐसा शासक सार्वभौम होता है, वह सम्पूर्ण प्राणियों का स्वामी (सर्वयश) होता है और महासागरों से सीमित सम्पूर्ण अर्थ का एकराट् होता है इस प्रकार सामन्त पर्यायी सर्वव्यापी शासक का बोधक है।

उच्चवर्ग तन्त्र राज्य का शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि ऐसे भी राज्य थे जिनके शासक वही हो सकते थे जिनको दूसरे राजाओं की सहमति प्राप्त हो। डॉ० अल्तेकर का मत है कि ऐसे राज्यों से इस विवरण का तात्पर्य है सामन्त अथवा गणराज्य, जिसके मुखिया (राजा) को चयनित करने वाले अधिकारी स्वयं राजा कहे जाते थे। ऐसे राज्यों का अस्तित्व 600ई० पू० तक था। परन्तु रामायण के एक विवरण से एक भिन्न भाव ही निकलता है। इस विवरण में उल्लेख मिलता है कि राम के राज्याभिषेक के समय राजा दशरथ ने विभिन्न देशों के राजा तथा विभिन्न नगरों के प्रधान पुरुषों को बुलवाया था। उन लोगों से राम में युवराज बनने योग्य गुणों का समर्थन प्राप्त करने के बाद ही उनको युवराज बनाने का अन्तिम निर्णय किया। इससे स्पष्ट होता है कि राजा के चयन की यह भी एक परम्परा रही होगी। परमेष्ठ्य राज्य, जन–राज्य, विप्रराज्य तथा समर्थ राज्य का उल्लेख डॉ० परमात्माशरण ने वेदों के आधार पर किया है। अथर्ववेद में परमेष्ठी प्रजापतिः कई स्थानों पर आया है। परमेष्ठी शब्द का अर्थ है – परम अथवा श्रेष्ठ स्थान में रहने वाला, प्रजा पालन के श्रेष्ठ कार्य में नियुक्त शासक। ऐसा शासक प्रजाजन द्वारा नियुक्त होता है और यदि वह योग्य रीति से शासन न करे तो उसे शासक के स्थान से हटाया भी जा सकता है। ऐसे राज्य को पारमेष्ठ्य राज्य कहा गया है। इसके अतिरिक्त वेदों में ओर भी कई प्रकार के राज्य शासनों का उल्लेख है यथा जान राज्य, विप्र राज्य, समर्थ राज्य जिनके विषय में कुछ बताना उपयुक्त होगा। जो राज्य शासन प्रजा की सम्मति से प्रजा की भलाई के लिए, प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है। स्पष्ट है कि भौगोलिक विविधता एवं अन्य विभिन्न कारणों से प्राचीन भारत में राज्य की विभिन्न पद्धतियॉ व्याप्त थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. एस० एस० अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति।
2. डा० परमात्मा शरण, प्राचीन भारत में राजनीति विचार एवं संस्थाएँ।

3. बनर्जी, एन.वी., द स्पिारट ऑफ इन्डियन फिलॉसफी, दिल्ली, 1974.
4. बार्कर, ई०, द पॉलिटिक्स ऑफ अरिस्टाटिल, ऑक्सफोर्ड, 1946.
5. बी.पी. वर्मा, ह्यूमन पर्सनालिटी एण्ड पॉलिटिक्स, के.एस. मूर्ति (संपा.)।
6. डी. आर. भण्डारकर, सम ऑस्पेक्टस ऑफ एन्शियन्ट इंडियन हिन्दू पॉलिटी।
7. मैक्रिन्डल, ऐन्शेन्ट इण्डिया–इट्स इवेजन बाई अलेक्जेण्डर द ग्रेट।
8. हरिश्चन्द्र शर्मा, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थायें, जयपुर पब्लिसर्स।
9. ए० एस० अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति।
10. के० पी० जायसवाल, हिन्दू पॉलिटी।
11. एच० एन० सिन्हा, दि डिवलेपमेन्ट ऑफ इण्डियन पॉलिटी।
12. बी० के० सरकार, दि पॉलिटीकल इन्स्टीट्यूशन्स एण्ड थ्योरीज ऑफ द हिन्दूज।
13. कल्पसूत्र (सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, वोल्यूम 22)।
14. बी०एन० पुरी, इण्डिया–अण्डर द कुषाण (1965)।
15. श्री राम गोयल, गुप्त साम्राज्य का इतिहास।
16. प्रो० भगवती प्रसाद पांथरी, मौर्य साम्राज्य का सांस्कृतिक इतिहास।
17. एस०सी० मिश्रा, व इबोलूशन ऑफ कोटिल्याज अर्थशास्त्र एक इनसक्रिप्शनल एप्रोच।
18. वी०आर० रामचन्द्र दीक्षितार, द मौर्यन पॉलिटी।
19. रोमिला थापर, अशोक एण्ड द डेक्लाइन ऑफ मोर्याज।